

चौबीस तीर्थंकर पूजन

(डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल कृत)

(स्थापना)

(हरिगीतिका)

अरे तीर्थंकर प्रकृति का परम पावन योग है।
जगत हितकर दिव्यध्वनि का योग है संयोग है॥
चौबीस तीर्थंकर हुये संपूर्ण चौथे काल में।
दिव्यध्वनि जमती रही रे भव्यजन के भाल में ॥ १ ॥

आज भी वह प्राप्त है जिनमार्ग के आलोक में।
निज हृदय में कर थापना सब लाभ ले इस लोक में॥
वे सभी जिनवरदेव अब आवें हमारे पास में।
उन सभी को थापित करें हम स्वयं अपने आप में ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तचतुर्विंशतिजिनसमूह! अत्र अवतर-अवतर संवौषट् ।
ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तचतुर्विंशतिजिनसमूह!! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ, ठः ठः ।
ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तचतुर्विंशतिजिनसमूह!!! अत्र मम सन्निहितो भव-भव
वषट् ।

(वीर)

जल

यह जल उज्ज्वल पावन शीतल अरु स्वभाव से है अम्लान।
चरण कमल में अर्पित करके हो जायें हम आप समान॥
ऋषभदेव से वीरप्रभु तक श्री तीर्थंकरदेव महान।
अति विनम्र हो हम करते हैं उनकी महिमा का गुणगान॥

ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरपर्यंत चतुर्विंशतितीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो जन्म-जरा-
मृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा ।

चन्दन

शीतल चन्दन ताप निकन्दन सम्यक्दर्शन सहित विवेक।
चरणों में अर्पित करते हैं भव आतप के नाशन हेत॥
ऋषभदेव से वीरप्रभु तक श्री तीर्थकरदेव महान।
अति विनम्र हो हम करते हैं उनकी महिमा का गुणगान॥

ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरपर्यंत चतुर्विंशतितीर्थकर जिनेन्द्रेभ्यो संसारतापविनाशनाय
चन्दनं नि. स्वाहा ।

अक्षत

आतम सम अखण्ड अविनाशी अक्षत अर्पित करते हैं।
निज आतम को प्राप्त करें हम यही कामना करते हैं॥
ऋषभदेव से वीरप्रभु तक श्री तीर्थकरदेव महान।
अति विनम्र हो हम करते हैं उनकी महिमा का गुणगान॥

ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरपर्यंत चतुर्विंशतितीर्थकर जिनेन्द्रेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये
अक्षतं नि. स्वाहा ।

पुष्प

कल्पद्रुम के पुष्प अनूपम अर्पित करते चरणों में।
परमशुद्धता प्रगटित होवे हम सबके आचरणों में॥
ऋषभदेव से वीरप्रभु तक श्री तीर्थकरदेव महान।
अति विनम्र हो हम करते हैं उनकी महिमा का गुणगान॥

ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरपर्यंत चतुर्विंशतितीर्थकर जिनेन्द्रेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय
पुष्पं नि. स्वाहा ।

नैवेद्य

क्षुधारोग नाशक मधुरिम चरु अर्पण करते प्रभुवर हम।
क्षुधा शान्ति के चाहक हैं हम अन्य वस्तु न चाहें हम॥
ऋषभदेव से वीरप्रभु तक श्री तीर्थकरदेव महान।
अति विनम्र हो हम करते हैं उनकी महिमा का गुणगान॥

ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरपर्यंत चतुर्विंशतितीर्थकर जिनेन्द्रेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय
नैवेद्यं नि. स्वाहा ।

दीप

स्वपरप्रकाशक मणिमयदीपक अर्पण करके हे जिननाथ!
अंतरंग के घोर अंधेरे से छुटकारा पायें नाथ॥
ऋषभदेव से वीरप्रभु तक श्री तीर्थंकरदेव महान।
अति विनम्र हो हम करते हैं उनकी महिमा का गुणगान॥

ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरपर्यंत चतुर्विंशतितीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो मोहान्धकार-
विनाशनाथ दीपं नि. स्वाहा।

धूप

अरे सुगन्धित प्रासुक ताजी धूप मनोहर चरणों में।
अर्पित कर हम संयम धारें नित अपने आचरणों में॥
ऋषभदेव से वीरप्रभु तक श्री तीर्थंकरदेव महान।
अति विनम्र हो हम करते हैं उनकी महिमा का गुणगान॥

ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरपर्यंत चतुर्विंशतितीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्मदहनाय
धूपं नि. स्वाहा।

फल

पुण्य-पाप फल अर्पित कर हम परमशुद्धभाव धारें।
और मोक्ष फल पाने को हम निज आत्म को अपना लें॥
ऋषभदेव से वीरप्रभु तक श्री तीर्थंकरदेव महान।
अति विनम्र हो हम करते हैं उनकी महिमा का गुणगान॥

ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरपर्यंत चतुर्विंशतितीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये
फलं नि. स्वाहा।

अर्घ्य

जीवन में अभिलाषायें तज शुद्धभाव धारण करलें।
अरे अर्घ्य यह अर्पण करके हम अनर्घ्यपद प्राप्त करें॥
ऋषभदेव से वीरप्रभु तक श्री तीर्थंकरदेव महान।
अति विनम्र हो हम करते हैं उनकी महिमा का गुणगान॥

ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरपर्यंत चतुर्विंशतितीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपद-
प्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

नमन करें कर जोड़कर अपने हित के काज।
तीर्थकर वर्तमान के चौबीसों जिनराज ॥ १ ॥

(हरिगीतिका)

अपनत्व अपने में तथा निज आत्मा में लीन हो।
हो वीतरागी पूर्णतः सर्वज्ञ हो स्वाधीन हो॥
तुममें अनन्तानन्त गुण एवं अनादि-अनन्त हो।
श्री ऋषभ से वीरान्त तक चौबीस तीर्थकर प्रभो ॥ २ ॥

इस जगत को शिवमग बताया दिव्यध्वनि से आपने।
सन्मार्ग पर चलना सिखाया भविकजन को आपने॥
जिन तीर्थ का वर्तन प्रवर्तन हुआ जिनवर आपसे।
रे चरणरज पा आपकी भवि पार हों संसार से ॥ ३ ॥

जगत की प्रत्येक वस्तु स्वयं में परिपूर्ण है।
नहीं कुछ भी कमी अपने आपमें संपूर्ण है॥
अनित्य है पर्याय से पर द्रव्य-गुण से नित्य है।
बदलती है नित्य^१ किन्तु बदलकर भी नित्य^२ है ॥ ४ ॥

यह एक क्षण भी नहीं बदले कभी हो सकता नहीं।
बदल जावे पूर्णतः यह कभी हो सकता नहीं॥
नित्यता की भाँति इसका बदलना भी नित्य है।
अनित्य है अर नित्य है अर स्वयं नित्यानित्य है ॥ ५ ॥

इस जगत के परिणमन का कर्त्ता न धर्त्ता कोई है।
इस जगत में सुख-दुःख का न दान-दाता कोई है॥
सब स्वयं में ही लीन हैं सब स्वयं के आधार हैं।
सब जीव अपने परिणमन के स्वयं जिम्मेवार हैं ॥ ६ ॥

जीवन-मरण अर दुःख सुख सब स्वयं से होते सदा।
अर करम के उदय उनमें निमित्त होते हैं सदा॥
अन्य कोई जीव तो उनमें करे कुछ भी नहीं।
हम रोष करते रहे जबकि करें वे कुछ भी नहीं॥ ७॥

अरे पर में एकता ममता भयंकर भूल है।
और करना भोगना पर को भयंकर शूल है॥
मिथ्यात्व मिथ्याज्ञान एवं आचरण प्रतिकूल है।
इन सभी की निवृत्ति ही भवोदधि का कूल है॥ ८॥

पाप के सम पुण्य भी तो चतुर्गति का मूल है।
पुण्य को सुखकर समझना भी भयंकर भूल है॥
पाप के सम पुण्य भी तो बंध के अनुकूल है।
अरे संवर निर्जरा अर मोक्ष के प्रतिकूल है॥ ९॥

बंध भी पर्याय है अर मोक्ष भी पर्याय है।
पर त्रिकाली आत्मा पर्याय से भी पार है॥
वह त्रिकाली आत्मा मैं भवोदधि से पार हूँ।
मैं स्वयं ही अरे जिनवर स्वयं का आधार हूँ॥ १०॥

ऋषभ से वीरान्त तक सबने बताया जगत को।
जगत से अद्भुत निराला भिन्न जानों स्वयं को॥
और इकदम लीन कर दो स्वयं में ही स्वयं को।
एवं सभी संसार से तुम भिन्न कर दो स्वयं को॥ ११॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरपर्यंत चतुर्विंशतितीर्थंकर जिनन्द्रेभ्यो महार्घ्यं नि.
स्वाहा ।

(दोहा)

जिनवर का उपदेश यह एकमात्र है सार।
धारे जो उनको करे भव समुद्र से पार॥ १२॥

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)